REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2019

समकालीनता की अवधारणा और स्त्री

झाला शैलेषकुमार भरतसिंह
बी.ए., एम.ए., एम.एड्.

प्रास्तावना –

समकालीन कथा साहित्य में स्त्री स्थिति और गति पर विचार करने से पहले समकालीन की अवधारणा स्पष्ट होना आवश्यक है। समकालीनता अंग्रेजी के 'Contemporary' का हिन्दी पर्याय है, जिसका तात्पर्य है– 'State of being Contemporary' अर्थात् समकाल या एक ही काल या अपने समय का, या समवयस्क या सामयिक या एक समय आदि से है। वास्तव में समकालीनता एक सम्पूर्ण चेतना है, जो सामयिक संदर्भों, दबावों के तहत विशिष्ट स्वरूप व संरचना धारण करती है। अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ मुठभेड़ ही समकालीनता है। समकालीनता एक ऐसा विशिष्ट पद है जो सतत् वर्तमान प्रक्रिया को अपने में समाहित किये रहता है। वर्तमान समाज और संस्कृति तथा रचनात्मक दबाव जहाँ एकमेव हो जाए वहाँ काल की गति वर्तमानता के साथ समकालीन भी होती है। यह कालक्रम के साथ ही साथ एक विचार भी है। हर एक समय एवं समाज की समस्याएं एक सी नहीं होती है या समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। अपने समय का यथार्थबोध तथा समाज के प्रति लोक पक्षधरता और सचेत मानवीय चेतना ही समकालीनता का बोधक होती है। यह वास्तव में भावों के वैविध्य का रूपान्तरण है। समकालीनता को प्रासंगिकता, आधुनिकता से जोड़कर उनका समानधर्मी समझा गया है।

आज हम 21वीं सदी के शैशवावस्था से गुजर रहे हैं। शिक्षा का काफी प्रचार–प्रसार हो रहा है। हम सूचना एवं जनसंचार क्रान्ति, औद्योगिक एवं प्रौद्योगिक क्रान्ति, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण के दौर से गुजर रहे हैं। इस कारण जीवन की स्थिति–परिस्थिति में युगान्तकारी बदलाव आ गया है। नैतिक–अनैतिक, पाप–पुण्य का मानदंड बदलने लगा है। नारी जीवन पर भी इसका गहरा प्रभाव दिखायी पड़ता है।

समकालीन लेखन का सीधा सम्बंध वर्तमान लेखन के साथ जुड़ा हुआ है। अर्थात् जिसमें आज की सम–विषम परिस्थितियों का साक्षात्कार हो और बिना किसी पूर्वाग्रह के अपने समय के सच को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित किया गया हो। समकालीन होने का तात्पर्य यह भी है कि अपने समय के वैचारिक एवं रचनात्मक दबावों को झेलते हुए तमाम तनावों, उलझनों व विसंगतियों के बीच अपनी सृजनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना। समकालीन लेखन का साहित्य विमर्श स्त्री विषय दृष्टि के बिना अधूरा है, जिसके रचनात्मक प्रयत्न के केन्द्र में समसामयिक जीवन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रूप एवं आकार लेती स्त्री चेतना है। इक्कीसवीं सदी को महिलाओं की सदी घोषित कर दिया गया है। आज नारी भी अपने वजूद के प्रति सजग हुई है।

समकालीन शब्द को दो अर्थों– प्रथम गतिशीलता के अर्थ में जो कि समय सापेक्ष गतिमान है, दूसरा अर्थ प्रासंगिकता में समझना चाहिए। हिन्दी कथा साहित्य में सातवें दशक से लेकर आज तक के कथा साहित्य को हम समकालीन कथा साहित्य के नाम से जानते हैं भले ही समय–समय पर कथा साहित्य विभिन्न आन्दोलनों के रूप में प्रतिफलित हुआ हो। ऐसा ही प्रासंगिकता से भी आशय लिया जाना चाहिए जो किसी

साहित्य की प्रासंगिकता चाहे वह आज के समय का हो, चाहे मध्यकाल का ही क्यों न हो, यदि उसका विषय क्षेत्र प्रासंगिकता है तो उसे हम आज भी प्रासंगिक कहेंगे जैसे कबीर और निराला के संदर्भ में देखा जाता है। ये कवि तो अपने समय से अधिक आज प्रासंगिक लगते हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य मनुष्य के प्रश्नों, संकटों, संघर्षों अन्तर्द्वन्द्वों और उसके स्वप्नों को खास अहमियत देता है। आज के हिन्दी साहित्य का परिदृश्य पहले से भी अधिक जटिल सामाजिक एवं मानवीय प्रश्नों को बाध्य करता है। भारतीय समाज में सदियों से स्त्री, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक हाशिए पर रहे हैं। समकालीन कथा साहित्य में आज ये दमित अस्मिताएं हाशिए से निकलकर अपनी जगह तलाश रही है। आज हाशिए के समाज ने अपने समय की चुनौतियों को स्वीकार करके संघर्ष का रास्ता अख्तियार किया है। ऐसा नहीं है कि स्त्री, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों ने इससे पहले संघर्ष नहीं किये, संघर्ष किये हैं; किन्तु यह संघर्ष अस्तित्व भर तक सीमित रहा। यही कारण है कि उनका यह संघर्ष सार्थक पहचान नहीं बना सका। यथास्थितिवादी और रूढ़िवादी व्यक्तियों ने इसका भरपूर फायदा उठाया।

स्वतंत्रता से पूर्व सम्पूर्ण भारत वर्ष की जनता के सामने एक लक्ष्य था– स्वाधीनता की प्राप्ति। इसी लक्ष्य को पाने के लिए बच्चे से लेकर बूढ़े महिला और पुरुष तक त्याग व संघर्ष के लिए तैयार थे। जनता तन–मन–धन से अंग्रेजों से लड़ने को तैयार थी। जनता ने अपनी आँखों में स्वाधीन भारत का एक सपना संजो लिया था। देश के नेताओं से उन्हें बड़ी–बड़ी आशाएं थीं। अपना शासन होगा, उनके सुख–दुख को समझने वाले लोग होंगे, प्रगति का द्वार खुलेंगे और सभी अपनी इच्छानुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र होंगे, उन्हें अवसर और सुविधा मुहैया होगा, कोई पीड़ित व लाचार नहीं दिखायी देगा। शोषण, गरीबी, लाचारी देश की सीमा के बाहर होगा, परन्तु यह सपना, केवल सपना ही रहा वह साकार न हो सका।

देश स्वतंत्र हो जाने के उपरान्त जनता की आशाएँ निराशाओं में तब्दील होने लगी क्योंकि स्वतंत्रता के बाद ही लोगों के यह बात अच्छी तरह समय में आ गयी कि सत्ता अवश्य बदल गयी है परन्तु परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया है। शासक बदल गए परन्तु शोषित जनता वैसे के वैसे ही रही। अर्थ शक्ति का पर्याय बन गया। समाजवाद पूँजीवाद की गिरफ्त में आ गया। ऐसे में जनता की स्थिति में सुधार की बात तो दूर, रोज नई–नई समस्याएँ उभरने लगीं। धनी और निर्धन के बीच खाई बढ़ती गई जातिवाद बढ़ा, संघर्ष बढ़े, साम्प्रदायिकता बढ़ी। शोषण, हिंसा, लूट–खशोट के साथ स्त्री का उत्पीड़न, अत्याचार और बलात्कार रोज की आम खबर बन गयी। नेताओं का लक्ष्य देश–सेवा न होकर धन संचय करना और अपनी कुर्सी पाना हो गया। गाँवों के विकास के लिए कई योजनाएं चलायी जाने के बावजूद गाँवों की अर्थव्यवस्था बिगड़ती चली गयी। गरीबी बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद और अधिकारियों की निरंकुशता बढ़ी। विकास के सारे नारे खोखले सिद्ध हुए। 'गरीबी हटाओ' केवल एक जुमला बनकर रह गया और इस तरह स्वतंत्र भारत की सम्भावित उपलब्धियाँ कागजों में सिमटकर रह गई। इन परिस्थितियों में समकालीनता की पहचान एक मनोदशा के रूप में की गयी है। समकालीनता समकालीन रचना में व्यक्त वृत्ति या मनोदशा विशेष है। विशेष प्रवृत्ति के आधार पर ही समकालीन साहित्य में समकालीनता का निर्धारण किया जाता है। समकालीनता को यदि पहचान भी लिया जाता है तो पहला प्रश्न यह है कि इसको विभाजन सीमा कहाँ से स्वीकार किया जाये? क्योंकि यह आधुनिकता का ही एक कालखण्ड है, विस्तार है और मूल्यगत स्तर पर भिन्न भी है। इसी दौरान उत्तर आधुनिकता जैसा शब्द की चर्चा में आ गया है।

दूसरा प्रश्न यह है कि समकालीनता पूरे युग का सामाजिक–ऐतिहासिक बोध न होकर स्थिति विशेष का ही बोधक है, जिसे आधुनिक काल के संदर्भ में एक सीमित दायरे में देखा जाता है। इस प्रकार लगता है कि कहीं न कहीं समकालीनता आधुनिकता से प्राप्त एक संस्कार है जो आधुनिकता की नयी व्याख्या करता है। यही संस्कार समकालीनता में एक दृष्टि व विजन पैदा करता है। इस दृष्टिकोण से मालूम होता है कि समकालीनता आधुनिकता का ही अगला चरण है, उसका एक कालखण्ड है, जो किसी काल की स्थिति विशेष की वह दायित्वपूर्ण चेतना है जो अपने परिवेश को सभी को सही ढंग से प्रस्तुत करती है।

समकालीनता विविध समयों में घटी–घटनाओं के बीच अन्तर्सम्बंध को भी व्याख्यायित करती है। इसका अर्थ यह भी नहीं लगाना चाहिए कि समकालीन कथा लेखन के दौर के लेखक समकालीन ही हैं जबकि पूर्ववर्ती लेखक गैर समकालीन। रघुवीर सहाय ने समकालीनता को बहुत की व्यापक ढंग से परिभाषित किया है– ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है।''1

वैसे देखा जाये तो देश की आजादी और विभाजन इतिहास की एक महत्वपूर्ण बड़ी घटना है। जिसने सिर्फ समय को ही विभाजित नहीं किया साथ ही साथ समाज और साहित्य को भी विभाजित किया है। आजादी के साथ भारतीय जनता में एक महास्वप्न व्याप्त था, जो लगभग एक ही दशक के बाद टूट गया। इसी समय खासकर कथासाहित्य में कई आन्दोलनों ने जन्म लिया। स्वातंत्र्योत्तर कहानी के साथ ही साठोत्तरी पद का प्रयोग अधिक किये जाने लगे। 1960 के बाद भारतीय राजनीति में लोगों का मोहभंग शुरू हो गया और कुछ घटनाओं ने जैसे 1962 का भारत–चीन युद्ध ने हिन्दी–चीनी भाई–भाई और नेहरू के पंचशील सिद्धान्तों की धज्जियाँ उधेड़ दी थी इस घटना ने न सिर्फ बुद्धिजीवियों को परेशान व बेचैन किया बल्कि वैचारिक धरातल पर बदलाव भी दिखायी देने लगा था, जो बाद के दशकों में बढ़ता ही गया। वस्तुओं को देखने, परखने, जाँचने की दृष्टि भी बदलती गयी जिस कारण साहित्य और समाज में भी परिवर्तित दृष्टि का प्रभाव दिखायी दे जाने लगा। इसी दौर में आधुनिकता के भीतर ही समाज और साहित्य में एक नयी प्रवृत्ति पनम रही थी जिसकी पहचान आगे चलकर समकालीनता के रू᳴ में की जाने लगी। इस प्रकार यह आधुनिकता के भीतर ही एक विचारधारा, एक जीवनदृष्टि और एक लेखन शैली अस्तित्व में आई। जन आकांक्षाओं में बदली हुई प्रवृत्ति ने समकालीन साहित्य को भी प्रभावित किया। और तत्कालीन साहित्यकारों ने बदली हुई जनआकांक्षाओं की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की।

आजादी के बाद सामंतवाद के सारे सामाजिक और वैचारिक विशेषों को समाप्त कर जिन लोकतांत्रिक संस्थाओं और मूल्यों के आधार पर जीवन की पुनर्रचना के स्वप्न देखे गये थे वे न सिर्फ अधूरे रह गये हैं बल्कि सभी संकट से घिर गए। इसी काण ''हम समकालीनता के बोध को उस पुनर्रचना के संघर्ष से अलग करके नहीं देख सकते। यह बोध राष्ट्रीय जीवन के आधुनिकीकरण अर्थात् सामंती, सामाजिक तथा वैचारिक अवशेषों को समाप्त कर जनवादी मूल्यों पर आधारित समाज और संस्कृति के निर्माण के संघर्ष का अभिन्न अंग है।''2

स्वतंत्रता प्राप्ति के थोड़े ही दिनों के बाद लोकतंत्र की जगह पूँजीवाद कायम हो गयी। घूसखोरी, जमाखोरी और भ्रष्टाचार की वजह से भारतीय लोकतंत्र को गहरा आघात पहुँचा। देश की
सर्वोच्च संवैधानिक संस्था संसद भवन से आम आदमी की आस्था समाप्त हो गयी। लगातार लोकतंत्र के संकुचित होते दायरे से आम आदमी को घुटन और सफोकेशन महसूस हुआ और वह व्यवस्था का विरोधी–विद्रोही हो गया। वह सामाजिक व्यवस्था को शक की नजर से देखने लगा। समकालीन कथा साहित्य में सभी समस्याएं चरित्रार्थ होने लगी थी। समकालीनता किसी भी परम्परा को यूँ ही नहीं स्वीकार कर लेती है बल्कि उसकी सामाजिक उपादेयता का परीक्षण भी करती है। वैसे समकालीनता की शुरूआत 8वें दशक से मानी जानी चाहिए किन्तु हमने अपने शोध–प्रबन्ध में 21वीं सदी के प्रथम दशक की रचनाओं को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया है। इसके पूर्व और बाद की रचनाओं का सम्मिलित करने में असुविधा महसूस होती है। 21वीं सदी के प्रथम दशक की रचनाओं को विशेष महत्व है। जब समूची दुनिया पर संकट के बादल छाए हुए थे, दुनिया तमाम परिवर्तनों का सामना कर रही थी, तब समकालीनता इसकी चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करती है और उससे लड़ने व सामना करने के लिए एक मजबूत वैचारिक आधारभूमि प्रदान कर रही है। यह देश–काल के बदलाव को मानवीय संदर्भ में, देखने का हिमायती है जिससे आम आदमी भी खास आदमी की तरह रह सकें, जीवन यापन कर सके। जीवन की सभी समस्याओं से जूझने की शक्ति संचित कर सके।

सन् 1960 के पश्चात् राष्ट्रीय स्तर पर हुए परिवर्तनों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देता है। यह परिवर्तन पंचवर्षीय योजना के मूल्यांकन, पंचशील समझौते और भारत चीन ़युद्ध, पाक–भारत युद्ध के परिणाम स्वरूप तेजी से उभरता दिखायी देता है। इसके साथ ही विश्व के अन्य भागों में होने वाली सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक क्रान्तियों का प्रभाव भी भारतीय मानस पर पड़ा है जो समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में प्रतिबिम्बित होता दिखायी देता है। मोहभंग की परिस्थितियों ने साहित्य की अन्य विधाओं के समान हिन्दी उपन्यास और कहानी को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। यहाँ तक कि कथानक चयन से लेकर अभिव्यक्ति शैली तक में नया बदलाव दिखायी देता है। इस प्रकार समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन की विविध पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है साथ ही 8वें व 9वें दशक के बाद स्त्री अस्मिता का अधिकार के प्रश्न बड़ी तेजी से उठाए गए जिसमें महिला व पुरुष दोनों की बहुत बड़ी भूमिका है। स्वाधीनता के बाद देश की जो सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ उभरकर आयी उसने समकालीन जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। ऐसे में समकालीनता की अवधारणा में परिवर्तन

स्वाभाविक है। ऐसे में समकालीनता वस्तुतः एक दृष्टि है जिसके द्वारा प्रत्येक रचनाकार अपने समय के वस्तु–सत्य को पूरी समग्रता में अर्थात् उसकी ऐतिहासिकता के साथ ग्रहण करता है। समकालीनता का निर्धारण करते हुए राजेश जोशी का कहना है– ''समकालीनता के पद का निर्धारण मुझे लगता है समय को विभाजित करने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। लेकिन अक्सर अपनी सुविधा के अनुसार इस पद का उपयोग बहुत ही मनमाने ढंग से कर लिया जाता है। अपनी सुविधा से उसका विस्तार या संकुचन कर लिया जाता है, इस तरह अमूर्तन समकालीनता को एक अमूर्त पद बना देते हैं।''3

राजेश जोशी समकालीनता के पद के निर्धारण के साथ ही साथ समकालीनता की सीमाकरण की अमूर्तता को भी रेखांकित करते हैं। वे लिखते है– ''मैं सोचता हूँ कि एक महाजाति के जीवन में घटित हुई एक ऐसी घटना जो सामूहिक मन मस्तिष्क को विचलित कर डालती है, जो समय को अवधारणात्मक या मानसिक स्तर पर उस घटना के पहले और बाद की स्थितियों में बाँट देती है, उसे समकालीनता को निर्धारित करने वाली एक सीमा रेखा मान लिया जाना चाहिए।''4

इस तरह समकालीनता एक ऐसा पद बनता चला गया जब चाहो इसे रबर की तरह तान लो या फिर बहुत छोटा कर लो। इसे कोई भी एक निश्चित परिभाषा में नहीं बाँध सका है। सभी साहित्यकार व आलोचक अपनी सुविधानुसार इसी व्याख्या करते रहे हैं। समकालीनता की मर्यादा एवं सीमाओं की ओर ध्यान देते हुए रघुवीर सहाय लिखते हैं– ''मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य का अनंत सम्भावनाओं का द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रत्यन उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है वही समकालीनता का धर्म निर्वाह करता है।''5

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् तीव्र गति से सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में जो बदलाव आया, उसने समाज और व्यक्ति दोनों को ही प्रभावित किया। व्यक्ति के परिवार, पड़ोस, समाज और जीवन को नियन्त्रित करने वाली अन्य सभी संस्थाओं के साथ पहले से चले आने वाले सम्बंधों में परिवर्तन देखा गया। जैसे–जैसे उत्तर आधुनिक परिस्थितियों और उन्हें विश्लेषित करने वाले उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन का प्रभाव बढ़ा वैसे–वैसे ही व्यक्ति मन की प्रश्नानुकूलता भी बढ़ी। अब व्यक्ति आत्म निरीक्षण के माध्यम से अपने यथार्थ से साक्षात्कार को तत्पर हुआ तथा अपने प्रतिकूल परिवेश के सामने प्रतिरोध और विद्रोह की मुद्रा में आ खड़ा हुआ यही परिवर्तन साहित्य में भी दिखायी देने लगा।

इस तरह से देखा जाय तो समकालीनता एक विचार या दृष्टिकोण है जिसमें समय के यथार्थ को पूरी तटस्थता के साथ जाँचा–परखा जाता है और यही जाँचने व परखने की क्षमता उस व्यक्ति को समकालीन बनाती है। डॉ0 एन0 मोहनन समकालीनता को इस प्रकार प्रकट करते हैं– समकालीनता वर्तमान जीवन प्रणाली की जटिलता को उसकी पूरी समग्रता में सूक्ष्मता के साथ व्याख्यायित, परिमार्जित एवं प्रतिक्रियान्वित करने वाली गहरी समझ का नाम है। वह एक जागरूक चेतना है। वह आदमी–आदमी को जोड़ती है, अलगाती नहीं। उसमें मानव कल्याण की भावना है। समकालीनता को अर्जित करना चाहिए। वह बपौती के रूप में मिलने वाली चीज नहीं। समकालीनता एक प्रवृत्ति है, और प्रवृत्तियों को अर्जित करने की जरूरत होती है।''6

प्रतिरोध की चेतना से ही समकालीनता का सृजन होता है। यह अपने समय के साथ एक मुठभेड़ है। जो साहित्यकार या व्यक्ति जितना अधिक अपने समय के दबावों को महसूस करता है और परम्परागत जड़ व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की भावना रखता है वह उतना ही समकालीन होगा। इस तरह समकालीनता एक किस्म का रचनात्मक एवं सृजनात्मक सरोकार के रूप में भी हमारे सामने दिखायी देता है। इस संदर्भ में मधुरेश कहते हैं कि– ''समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपने सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना। समकालीन लेखन की पहचान यही हो सकती है कि अपने समय के सवालों के प्रति वह किस तरह प्रतिक्रिया करता है और अपने लेखन में इन सवालों के लिए जो जगह वह निर्धारित करता है, उन सवालों के प्रति वह कितना गंभीर है, कहीं न कहीं इन सबसे ही उसकी समकालीनता सुनिश्चित होती है।''6

उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट है कि समकालीनता चालू मुहावरों या रूढ़ियों की स्वीकृति नहीं है बल्कि विवेकपूर्ण स्वीकृति है। भक्तिकालीन कवि तुलसी, जायसी, मीरा और कबीर सभी समय के प्रतिकूल है किन्तु वे

चालू मुहावरे, लक्षण और सर्वानुमतवाद के विरुद्ध हैं, इसलिए वे सब समकालीन भी हैं। इस तरह ''समकालीनता को अर्जित करना होता है, अपने समय के साथ मुठभेड़ करते हुए उसमें हस्तक्षेप करते हुए, हर रचनाकार को अपनी समकालीनता स्वयं अर्जित करनी होती है।''7

राजेश जोशी जी ने समकालीनता की विभाजक रेखा के संदर्भ में 8वें, 9वें दशक में घटित महत्वपूर्ण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर केन्द्रित किया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास, साइबर जनतंत्र, दूर संचार क्रान्ति, कम्प्यूटर का आविष्कार, सी0एन0एन0 का आना, सूचना के अधिकार और मुद्रा का प्लास्टिक मुद्रा में रूपान्तरण, सोवियत संघ में समाजवादी सरकार के पराभव, धार्मिक कट्टरतावाद, साम्प्रदायिकता, नक्सलवाद, निजीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण के साथ बाबरी विध्वंस ने हमारे समय को विभाजित करने की एक रेखा खींची है। जोशी जी समकालीनता के निर्धारण में उपर्युक्त घटनाओं की अहम भूमिका मानते हैं। जिसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य का आयतन बदलता दिखायी दिया है और खासकर कथा साहित्य का। निष्कर्ष के रूप में समकालीनता को परिभाषित निम्न शब्दों में करते हैं– ''समकालीनता न तो प्रवृत्ति के आधार पर बनायी गयी श्रेणी है न विचारधारात्मक श्रेणी यह तो एक ऐसी सराय है जिसमें कोई भी अपना बिस्तर डाल सकता है।''8

किसी भी कृति या सिद्धान्त की समकालीनता मानवीय लक्ष्यों की ओर अग्रसरण की अनुकूलता पर निर्भर करती है, किसी भौतिक समयानुकूलता– प्रतिकूलता पर नहीं। समकालीनता एक काल में जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है।

समकालीनता पर विचार करते हुए प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र ने 'माध्यम' सहस्राब्दि अंक 22 के सम्पादकीय में लिखा है– ''समकालीनता शाश्वतता और सामयिकता से भिन्न प्रत्यय है। शाश्वतता में या समानतनता में जहाँ स्थायित्व और स्थिरता का बोध होता है वहीं समकालीनता में गतिशीलता और प्रासंगिकता का। परन्तु समसामयिकता जहाँ शाश्वतता का निषेध है वहाँ समकालीनता में शाश्वतता की सम्भावना है।''9 यही कारण है कि अवध किशोर सरन और निहार रंजन रे ने 'समकालीनता' को 'कुल' और 'शील' की संज्ञा में व्याख्यायित करने की कोशिश की है। यह जरूरी भी नहीं है कि समकालीनता आपके बौद्धिक विश्लेषण के कारण को आगे बढ़ाये, बावजूद इसके यदि समदर्शी, स्वरूप आदि शब्दों के तर्ज पर समकालीनता का भी एक गहरा अर्थ है जो अपने समय का निष्पक्ष, ईमानदार न्यायिक विश्लेषण सिद्ध होता है। ऐसी दशा में समकालीन शब्द विशेषण के रूप में फैशन परस्त प्रयोग में आने और समसामयिक से इतर अर्थ रखता है। इस तरह समकालीन साहित्यकार वही कहा जा सकता है जिसे अपने समय का प्रत्याभिज्ञान हो, जो उसे ईमानदारी पूर्वक और निष्पक्षता के साथ परिभाषित करे। उसका बहाव धारा के अनुकूल न होकर बहाव के प्रतिकूल अग्रगामी हो जो चौकन्ना करता हो। चौकन्नापन ही समकालीनता का लक्षण है। व्यापकतर होते जाने की सम्भावना ही समकालीनता की शर्त है, संकीर्णता या शार्टकट नहीं। अनेक तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विज्ञान समकालीन, वर्तमान होता है, वह पूर्ण प्रत्ययों का इस्तेमाल करके उन्हें निरस्त करते हुए आगे बढ़ता है जबकि कला और संस्कृति में पूर्व प्रत्यय, विश्वास, उपलब्धियाँ समाहित रहती है, इसीलिए कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में समकालीनता वस्तुपरक नहीं हो सकती है, अधिक से अधिक आत्मपरक ही संभव है।

समकालीनता को परिभाषित करते हुए डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि– ''समकालीन एक काल में साथ–साथ जीना नहीं है, समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।''9 उसकी शर्तों का निर्धारण करते हुए कहते हैं कि– ''स्वचेतना, सचेतना या संवेदनशीलता समकालीनता की अनिवार्य शर्तें हैं।''10

प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति अपने समय और समाज के प्रति सचेत होता है। समाज में घटित होने वाली सभी घटनाओं पर अपनी पैनी नजर रखता है। उन घटनाओं में केन्द्रीय महत्व वाले प्रश्नों, समस्याओं, दबावों, को ढूँढता है और उसकी स्वचेतना, सचेतना और संवेदनशीलता का ही परिणाम होता है, जो हाशिए का समाज आज के साहित्य लेखन के केन्द्र में है। समकालीनता के संदर्भ में प्रो0 राजेन्द्र कुमार का कहना है कि– ''हमारे इतिहास ज्ञान–व्यवहार का रोज चीरहरण हो रहा है, तो क्या हमारा साहित्य हमारी सहायता का शोक–गीत बनकर रह जायेगा या असहायता को सेलीब्रेट करने लगेगा। ये दोनों स्थितियाँ नकारात्मक हैं। इस बदलाव को चुनौती के रूप में संवेदना के पक्ष में कैसे मोल्ड किया जाए, संवेदनशीलता से कैसे जोड़ा जाए, इन प्रश्नों से

जो लड़ेगा वही समकालीन साहित्य होगा। उसमें जो संवेदना होगी वही मनुष्यता के पक्ष में होगी। इस बदलते हुए समय में अपने इन्सान होने के बनाए रखने का प्रयास जो साहित्य करेगा वही समकालीन होगा।''11 उनका कहना है कि– ''समकालीन होने का अर्थ केवल एक काल विशेष में होना मात्र नहीं है, बल्कि एक समूची चेतना की समावेशिता का होना है।''12 समकालीनता का सम्बंध काल विशेष से होता है और साथ–ही–साथ इसका सम्बंध व्यक्ति विशेष और समाज विशेष से भी हाता है। प्रो0 राजेन्द्र कुमार ने लिखा है– ''समकालीनता के बारे में प्रायः सोच कुछ इस तरह की बनती है, मानो कुछ स्थितियाँ है जो पहले से नितान्त भिन्न हैं, नितान्त विच्छिन्न और चारों ओर से निरन्तर अधिक पास आकर हमें अपने घेरे में लेती जा रही हैं। मान लिया जा रहा है कि इस घेरे में होने का और इस घेरे से प्रतिक्रिया करने का जिसको जितना ही तीव्र एहसास है, वह उतना ही समकालीन है।''13

समकालीनता की कालपरक अवधारणा से असहमति जताते हुए गंगाप्रसाद विमल समकालीनता को प्रासंगिकता से जोड़ते है– ''समकालीन का अर्थ यह नहीं है कि दो व्यक्ति एक विशेष काल खण्ड में जी रहे हों और संयोग से वे रचनाशील भी हैं। जिस समकालीनता की बात की जा रही है उसका शब्दार्थ की धारणा से सम्बंध नहीं है, अपितु वह जीवन बोध के आधार पर समानधर्मी रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।''14

समकालीनता के विविध उपादानों से गुजरते हुए हम हिन्दी के वरिष्ठतम पीढ़ी के अलोचक प्रो0 विजयमोहन सिंह का मानना है कि– ''जब भी मैं साहित्य के संदर्भ में समकालीनता के विषय में सोचता हूँ तो हमेशा लगता है कि जिसे हम आधुनिक कथा साहित्य कहते हैं, उसका प्रारम्भ निश्चित रूप से समकालीन प्रश्नों, समस्याओं और दबावों के बीच ही हुआ होगा। शायद यही आधुनिक कथा साहित्य प्राचीन महाकाव्यों और पौराणिक कथाओं से अलग हो जाता है। मिथक और यथार्थ के बीच यह दूरी ही समकालीनता की अवधारणा को जन्म देती है किन्तु समकालीनता का बोध और उसकी चेतना हमें अपने समय के प्रति अत्यधिक सजग और सचेत बना देती है ....जब हम रचना के संदर्भ में समकालीनता की बात करते हैं तो हम पाते है कि हम तनी हुई रस्सी पर चल रहे हैं।''15

''अपने समय की महत्वपूर्ण समस्याओं के साथ उलझना ही समकालीनता है, इसमें साहित्यकार का अविरल साहचर्य वर्तमान की पीड़ा के साथ होता है और वह उसी की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में करता है। फिर भी अध्ययन की सुविधा और कालखण्ड को विभाजित करने की परम्परा के अनुसार यदि समकालीनता को रेखांकित करना आवश्यक हो, तो इसे कांग्रेस के विभाजन और उससे उत्पन्न देशवासियों के मोहभंग के बाद अर्थात् 1970 के बाद दिखलाया जा सकता है। आधुनिकता के साथ इसे बाँधने की कोई आवश्यकता नहीं है।''16

समकालीनता की अवधारणा में अपने युग की चुनौतियों और केन्द्रीय महत्व की समस्याओं का सामना करने की धारणा निहित होती है। इस संदर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव का विचार उल्लेखनीय है। उनका मानना है कि– ''गहरे ऐतिहासिक मोहभंग के परिणामस्वरूप आज की समकालीनता का एक सर्वथा एक नया मूल्य है जो हमें मानव अस्तित्व की कठोर गतिविधियों कर्म या राजनीति में हिस्सा लेने को बाध्य करती है। ....समकालीनता सिर्फ मुहावरा नहीं है बल्कि आज की संश्लिष्ट वास्तविकता में प्रवेश करने का संकल्प या प्रतिबद्ध जीवन दृष्टि है। तीखे मोहभंग के परिणामस्वरूप सौन्दर्याभिरूचि से स्थिर की हुई भाषा समकालीन मानवस्थिति के लिए व्यर्थ या अनुपयोगी साबित हो गयी थी।''17

21वीं शती के शुरूआत होने तक देश में नहीं उसके बाहर भी कई महत्वपूर्ण घटनाएं घट चुकी थी जिनसे मानव जीवन में बड़ी तेजी से बदलाव होने लगा था। देश के भीतर नब्बे के दशक में उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई उसने अचानक जीवन मूल्यों को बदल कर रख दिये। इससे खुले बाजार की अवधारणा विकसित हुई। भूमण्डलीकरण और खुले बाजार की अवधारणा से जुड़ी उदारीकरण की प्रवृत्ति ने पूरी दुनिया में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रान्ति मचा दी। जिसका जीता जागता उदाहरण– उपभोक्तावाद और उपभोग संस्कृति है। इसके परिणाम स्वरूप देश की गरीबी व बेरोजगारी कम होने के बजाय बेहताशा बढ़ती गयी। आज हम विश्व अर्थव्यवस्था के अंग बन गए हैं। आर्थिक गतिविधियों की नीतिगत निर्णयों को हमने भी प्रभावित किया है। जहाँ बाजार की शक्तियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन व अन्य आर्थिक संगठन इसका नियमन व संचालन करते है। इनके कर्ज से दबे देश इनकी शर्तों को मानने के लिए विवश हैं। आज दुनिया की सभी चीजें बिकाऊ हो गयी है। हमारे खेत,

खलिहान, जंगल, पानी, मिट्टी हवा सब कुछ बिकाऊ हो गयी हैं। स्थिति यहाँ तक हो गयी है कि आज व्यक्ति की संवेदना भी बिक जा रही है। यही प्रवृत्ति हमारी भाषा और संस्कृति को चोटिल कर रही है। आज अमेरिका जैसे पूँजीवादी देशों ने दुनिया के अन्य देशों पर अपनी सांस्कृतिक वर्चस्व को कायम किया है। और यही आगे चलकर धीरे–धीरे यह संस्कृति मानसिक गुलाम बनाकर, हमारे मन–मस्तिष्क और चेतना पर राज करेगी और हम कुछ कर भी नहीं पायेंगे, देखते ही देखते एक दिन वह अनुकूलन की दृश्य भी ला देगा जिससे मुक्त हो पाना कठिन हो जायेगा। यही वास्तव में समकालीनता है। वैसे वैचारिक धरातल पर उत्तर–आधुनिकता, उत्तर औपनिवेशिकता और अस्मितावादी विमर्श समकालीनता का सृजन कर रहे हैं। साहित्य और समाज में विचारों को थोपे जाने और नकार दिये जाने के बीच निरन्तर क्रिया–प्रतिक्रिया चल रही है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बहुआयामिकता ही समकालीनता की विशेषता है। इस तरह इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के हिन्दी कथा साहित्य की स्त्री तमाम कोशिशों के बावजूद सहचर पुरुष को उतना मानवीय नहीं बना सकी, लेकिन अपने लिए आत्म सम्मानपूर्वक जीवन जीने का रास्ता अवश्य तलाश सकी है। क्योंकि शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक आर्थिक हो या धार्मिक, उसके विरुद्ध विद्रोह होना है। समय की परवाह उसमें नहीं की जाती है।

हिन्दी कथा साहित्य में 'स्त्री दृष्टि' पर चर्चा करने से पूर्व समकालीनता के काल पक्ष का निर्धारण करना अनिवार्य होगा। यह काल एक ओर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य से जुड़ता है तो शताब्दी के आधार पर 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक भी सीमित हो सकता है। प्रवृत्तिगत दृष्टि से देखा जाए तो स्वतंत्रता नए मूल्यों और जीवन दृष्टि के कारण से प्रस्थान बिन्दु है। लम्बी गुलामी के उपरान्त भारतीय साहित्य की इस क्रान्तिकारी घटना का दूरगामी प्रभाव देश के मानस, साहित्यिक मानस फलतः साहित्य और कलाओं पर सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में सहज ही पड़ा। स्वतंत्रता को समस्त भारतीय साहित्य की ऐसी विभाजक रेखा माना जा सकता है जहाँ से नवलेखन का श्रीगणेश होता, परन्तु स्वतंत्रता के समय युवा पीढ़ी वह पीढ़ी थी जिसने अपना बचपन गुलामी में गुजारा था और वह गुलामी के संस्कार के साथ युवा हुई थी। और स्वतंत्र भारत में जन्मी पीढ़ी, जो सन् 70 के आस–पास युवा हुई थी, उसमें स्वतंत्रता का अहसास और बदले हुए नजरिये की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। स्वतंत्रता ने संविधान प्रदत्त अधिकार अवश्य सौंपे, पर उसे जीने और उपभोग की मानसिकता स्वतंत्रता के लगभग 20–25 वर्ष बाद उभरी। यही वह समय थ जब शिक्षा, रोजगार, राजैनिक सम्पत्ति विषयक अधिकारों का उपभोग करने का अवसर स्त्री को मिला। शिक्षा एवं रोजगार ने स्त्री की स्थिति में बदलाव हेतु अनुकूल परिस्थितियों को जन्म दिया। स्त्री के बदलते नजरिए ने स्त्री को सामाजिक समस्या के स्थान पर समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, मानवशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन के केन्द्र में आयी और उसके द्वारा उठाये गए प्रश्नों पर नए सिरे से विचार किया। अतः प्रवृत्तिगत परिवर्तन के आधार पर विचार करे तो काल की सीमा का निर्धारण 70 के दशक के बाद को निर्धारित करना होगा, किन्तु इसके स्थान पर इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक को केन्द्र में रखकर हम 'स्त्री प्रश्नों' से साक्षात करना चाहेंगे तो पाएँगे कि इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक 2001–2012 में सामाजिक परिवर्तन की गति सर्वाधिक तीव्र रही है। बाजारवाद व भूमण्डलीकरण ने अपनी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों के साथ सभी वर्ग की स्त्रियों को घर से बाहर निकलने के अवसर सृजित किये। स्त्री ने अपने लिए जहाँ अब तक के वर्जित क्षेत्रों में अपनी ठोस अहम उपस्थिति दर्ज करायी, वहीं आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में तीव्र प्रयास करती दिखायी देने लगी और उसका परिणाम आज समाज के सामने दिखायी दे रहा है। आर्थिक आत्म निर्भरता ने स्त्री को कई अर्थों में बदलने में मदद की है।

गर्भ निरोधकों की निर्मित और गर्भपात के अधिकार ने स्त्री को आतंकित रहने से मुक्ति दिलायी। राजनैतिक आरक्षण के प्रश्न ने स्त्री को केन्द्र में आने में मदद की है। नये वैज्ञानिक शोधों ने स्त्री की जैविक आधार पर दोयम दर्जे की भूमिका को नकारा। इस नई स्त्री ने जीवन और पारम्परिक समाज व्यवस्था में परिवर्तन के नये संकेत दिये हैं जिनका असर सामाजिक सम्बंधों पर पड़ा है। यद्यपि ये सभी परिवर्तनों के परिणामों में गुणात्मक प्रतिफलन हुआ। साहित्य जगत में विगत वर्षों में स्त्री का समाज के केन्द्र में आना और उससे आगे निकलकर विचार के केन्द्र में आना हमारे आर्थिक और सामाजिक विकास का परिणाम है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में स्त्री मुक्ति के सभी प्रश्न उठे, आयोग, संगठन व समितियां बनी, संविधान संशोधन कानून बदले, नये कानून बने। जनसंचार, पत्रकारिता, शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र, व्यापार क्षेत्र में पढ़ी लिखी महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की। इस दशक में विशेष रूप से स्त्री की व्यक्ति के रूप में पहचान हो सके,

स्त्रियों ने महत्वपूर्ण संघर्ष जारी रखा जिससे स्त्री प्रश्नों ने भारतीय यथार्थ पर नये सिरे से सोचने को विवश किया।

साहित्य जगत में कहानी और उपन्यास सशक्त केन्द्रीय विधा के रूप में अपनी स्थापना की, इसी अवधि में साहित्य के केन्द्रीय सरोकार 'महिला' एवं 'दलित' रहे हैं। 'स्त्री दृष्टि' पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण उपन्यास और कहानी इस अवधि में लिखे गए हैं। 2001–2010 में स्त्री विषयक लेखन में रेखांकन योग्य सम्पूर्णता व स्थिरता भी दिखायी देती है। 'स्त्री प्रश्नों' पर विमर्श भी इन वर्षों में सर्वाधिक हुआ है। महत्वपूर्ण स्त्री केन्द्रित पुस्तकों का प्रकाशन इन दस वर्षों की उल्लेखनीय विशेषता है। स्त्री विषयक विश्व साहित्य अनूदित होकर हिन्दी में आया है जिसने हिन्दी लेखन को बहुत हद का प्रभावित भी किया है। विविध पत्र–पत्रिकाओं के स्त्री–विशेषांकों ने इस विषय को केन्द्रीय विषय के रूप में स्थापित किया है। अतः स्वतंत्र्योत्तर कहानी एवं उपन्यासों के मोहपाश से बाहर आकर इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक पर अध्ययन केन्द्रित किया गया एवं शोध हेतु काल फलक 2001 से 2010 तक सीमित किया गया। शोध हेतु कहानी एवं उपन्यासों का चयन करते हुए यह सावधानी बरती गयी कि स्त्री से जुड़े विविध पहलुओं, वर्गों का प्रतिनिधित्व कहानी एवं उपन्यासों में हो सके। वैसे इस काल में स्त्री मुद्दे पर केन्द्रित बहुत अधिक मात्रा में कहानी एवं उपन्यास प्रकाशित हुए है, जिन्हें बहुत अधिक मात्रा में सम्मिलित कर पाना सम्भव नहीं है क्योंकि शोध–प्रबन्ध लेखन की भी अपनी एक सीमा व मर्यादा होती है, किन्तु समकालीन लेखन से जुड़े वरिष्ठ एवं नव्यतम पीढ़ी के प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाएँ शोध का विषय बन सकें।

संदर्भ ग्रंथ

1. समकालीन काव्य यात्रा, नन्दकिशोर नवल, पृ0 8
2. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, डॉ0 रामकली सराफ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण–1991, पृ0 198
3. समकालीनता और साहित्य, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 35
4. वही, पृ0 35
5. समकालीन काव्य यात्रा, नन्दकिशोर नवल, पृ0 9
6. समकालीन हिन्दी उपन्यास, एन0 मोहनन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2013, पृ0 20
7. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 176
8. समकालीन हिन्दी उपन्यास, एन0 मोहनन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2013, पृ0 20
9. समकालीन काव्य यात्रा, नन्दकिशोर नवल, पृ0 8
10. कृति–विकृति, संस्कृति, प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 प
11. समकालीन साहित्य और सिद्धान्त, डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ0 16
12. समकालीन कविता की भूमिका, डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, मैक मिलन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1976, पृ0 15
13. समकालीन लेखन ओर आधुनिक संवेदना, संपा0 कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–0000, पृ0 17
14. प्रतिबद्धता के बावजूद–साहित्य, इतिहास दृष्टि और समकालीनता, प्रो0 राजेन्द्र कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–0000, पृ0 62
15. माध्यम, अक्टूबर–दिसम्बर–2006, पृ0 101,
16. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 16
17. पक्षधर, संपा0 विनोद तिवारी, समकालीनता का प्रश्न और कथा साहित्य, विजयमोहन सिंह, मई–2007, अंक–3, पृ0 202

झाला शैलेषकुमार भरतसिंह
बी.ए., एम.ए., एम.एड्.